रक्तदान

● डॉ० आनन्दी प्रसाद माथुर

H
028.5 M 426 R

028.5
M 426 R

INDIAN INSTITUTE
OF
ADVANCED STUDY
LIBRARY, SHIMLA

रक्तदान

(बाल-कहानियां)

लेखक

डॉ० आनन्दी प्रसाद माथुर

CATALOGUED

© 242 9079

कवि सभा दिल्ली

30/106, गली नं०-7, विश्वास नगर

शाहदरा, दिल्ली-110 032

(हिन्दी अकादमी, दिल्ली के सौजन्य से प्रकाशित)

H
028.5
M 426R

Library IIAS, Shimla
H 028.5 M 426 R
00110671

© प्रकाशक

प्रकाशक : कवि सभा, दिल्ली
30/106, गली नं० 7,
विश्वास नगर, शाहदरा,
दिल्ली-110032
दूरभाष : 2429079

मूल्य : 15 रुपये

प्रथम संस्करण : 1995

वितरक : साहित्य वीथी
27/111, विश्वास नगर
दिल्ली-110032
मुद्रक : शांति मुद्रणालय
विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-32

Indian Institute of Advanced Study
ACC NO. 110671
DATE 17-2-2003
SHIMLA

RAKTADAN (Childern Stories)
By Dr. ANANDI PRASAD MATHUR

अनुक्रम

रक्तदान	5
धन कमाने की मशीन	9
शिकायत की लत	12
मेहनत का फल	15
चर्खा यज्ञ	18
युवक की ईमानदारी	21
ठोकर से सबक	23
स्वप्न का सुख	28

प्यार की दौलत

मेरे प्यारे बाल मित्रो ! मेरा यह पाँचवाँ बाल-कहानी संकलन तुम्हारे नन्हे-नन्हे हाथों में है। इससे पहले के कहानी-संग्रहों—'बदला चुका दिया', 'अनोखा राजहठ', 'थोथा पानी' और 'मानवता की सेवा' का आपने दिल से स्वागत किया। आपके कोमल हाथों से लिखे प्यार भरे पत्रों ने मुझे और लिखने के लिए प्रेरित किया। यह पाँचवाँ कहानी-संग्रह 'रक्तदान' आपके उसी अपार स्वागत का एक तोहफा है, जिसे मैं आपके हाथों में प्यार की दौलत और दुलार के रूप में भेंट कर रहा हूँ।

सच तो यह है कि मैंने बच्चों के लिए जितना भी लिखा है, बच्चों से ही प्रेरणा पाकर लिखा है। यही कारण है कि मेरा लेखन बच्चों की भाषा में और बच्चों के लिए होता है। इस संग्रह की सभी कहानियाँ भी ऐसे ही प्रेरणा-प्रसंगों का प्रतिफल हैं। इन कहानियों में मैंने आम जीवन की ऐसी प्रेरक घटनाओं का ताना-बाना बुनकर उन्हें जीवन दिया है, जो बच्चों को ही नहीं प्रौढ़ों को भी जीने की कुशल प्रणाली सिखाती हैं।

मैं आपको इस बात का पुनः विश्वास दिलाता हूँ कि इस पुस्तक की कहानियाँ भी आपको पूर्व कहानी-संग्रहों के समान पसन्द आएंगी और आपकी जीवन-यात्रा को सफल बनाने के लिए अमूल्य नैतिक सम्बल प्रदान करेंगी।

आप इन कहानियों को अवश्य पढ़ें और मुझे लिखना न भूलें कि ये सभी कहानियाँ आपको कैसी लगीं। तुम्हें मेरा प्यार भरा आशीर्वाद !

तुम्हारा,
डॉ० आनन्दी प्रसाद माथुर
शांति निकेतन,
सी-2/92, यमुना विहार
दिल्ली-110053
फोन : 2261946

रक्तदान

सुधा कितनी देर खम्भे के सहारे बैठी रही और कब बेसुध होकर ढुलक गई। किसी को पता नहीं चला। हां, सुधा को ही जब होश आया तो उसने अपने को डॉक्टरों और नर्सों से घिरे पाया।

सुधा सशंकित नेत्रों से चारों ओर देखने लगी। एक नर्स ने दवा का प्याला मुंह से लगाते हुए कहा, "घबड़ाइये नहीं, आप अस्पताल में हैं इस समय।"

अस्पताल में ? क्यों ? और मेरा दीपू ? सुधा ने विस्मय से नर्स की ओर ताकते हुए कहा।

हां, वह भी अच्छी तरह है, उसके भी कहीं चोट नहीं आई है। नर्स ने उत्तर दिया।

चोट, कैसी चोट, कहां है मेरा दीपू ? कहती हुई सुधा उठने लगी। किन्तु नर्स ने पकड़ कर फिर लिटा दिया। नर्स बोली दीपू बहुत अच्छी तरह है, आप चिन्ता न करें।

डाक्टरों ने सुधा की परीक्षा की ओर चार्ट पर लिखा—दुर्घटना से दिमाग पर गहरा असर हुआ है। डाक्टर चले गए। नर्स ने दीपू को सुधा की गोदी में लिटाते हुए कहा—भगवान की बड़ी कृपा हुई जो आप दोनों सुरक्षित बच गए। उफ़ ! कितनी भयंकर दुर्घटना थी।

सुधा ने अपनी गड्ढों में बैठी हुई आंखों को नर्स के चेहरे पर गढ़ाते हुए पूछा—कैसी दुर्घटना ?

नर्स वहीं स्टूल पर बैठ गई और सुधा को घटना की याद दिलाने की चेष्टा करती हुई बोली, आप सात नम्बर बस से आ रही थीं तो बस मोड़ पर खम्भे से टकरा गई थी। ड्राइवर और कितने ही यात्री तो घटना स्थल पर ही बेचारे मर गए और जो हैं वह भी सख्त घायल हैं।

मैं तो बस में नहीं थी और न मेरे साथ कोई बस दुर्घटना ही हुई है। मैं तो भिखारिणी हूं, भिखारिणी। सुधा ने आंखों के आंसू पोंछते हुए कहा।

सुधा के उत्तर से नर्स ने समझा कि दुर्घटना के कारण स्मरण शक्ति नष्ट हो गई है।

सुधा उठकर तकिए के सहारे बैठ गई। उसका गला रुंध रहा था। वह बड़ी कठिनाई से बोली, बहिन मैं ठीक कहती हूं। मेरे साथ कोई दुर्घटना नहीं हुई है।

सुधा ने अपनी करुण कहानी नर्स को सुनाई।

मेरे पति मुझे और पुत्र दीपू को निराश्रित कर चिर निद्रा में सो गए। वे कुछ वर्ष हुए बम्बई आए थे और यहां किसी दफ्तर में एक क्लर्क हो गए थे। उनकी तनखवाह तो मामूली

थी लेकिन इधर-उधर की और आमदनी ने हमारे ठाठ बांध दिए थे। इतनी महंगाई के होते हुए भी हमारे दिन बड़े ही सुख से बीत रहे थे। मैं गांव की अपेक्षा यहां अधिक सुखी और प्रसन्न थी, वल्कि इस समय तो मैं अपने गांव की जमीन पर हंसती और आश्चर्य करती कि न जाने लोग कैसे गांव में रहते हैं। मुझको नहीं मालूम था कि सुख और दुख दिन-रात की तरह आते-जाते रहते हैं।

एक दिन अचानक मेरे पति को साधारण-सी हरारत हो आई थी। मैंने समझा काम और दौड़-धूप अधिक की है, उसकी थकान होगी। यों ही ठीक हो जायेंगे। किन्तु जब चार-छः और दस दिन तक भी बुखार नहीं उतरा तो मुझे चिन्ता हुई। मैंने वाहर के एक अच्छे डॉक्टर को बुलाकर दिखाया। डॉक्टर ने रोगी की परीक्षा की और वताया टायफाइड बुखार है। यह सुन मैं घवड़ा गई। यहां परदेश में मैं अकेली क्या और कैसे करूं। मैंने गांव को सूचना भिजवाई किन्तु किसी ने भी खवर न ली।

मैंने पति के इलाज में कोई कसर नहीं रखी। पैसा, और पैसा समाप्त हो जाने पर अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय गहने इलाज में पानी की तरह बहा दिए किन्तु रोग बढ़ता ही गया। दिन, समाप्त और फिर महीने बीतने लगे किन्तु बुखार डॉक्टरों के काबू में नहीं आया। मैं बेचैन हो उठी। हे भगवान्! मैं अब क्या करूं? इस अबोध बालक पर तो दया करो। किन्तु अब मैं रात भर रोती रही लेकिन भगवान न पसीजा। विधना का विधान अटल था। मेरे पति अच्छे न हो सके।

उस लाखों की आवादी वाली वैभवपूर्ण नगरी में मैं अनाथ और अकेली रह गई थी। अव मुझे सहारा देने वाला कोई न था। मैं दिन-रात दीपू को कलेजे से लगाए रोती रहती। बम्बई जैसे बड़े शहर में किसे होती है फुर्सत जो वह किसी दूसरे की सुने। उस दिन पड़ोसियों ने सुना था कि इस कमरे में कोई मर गया है, किन्तु उनके अपने निश्चित कार्यक्रम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मुझको इस व्यवहार से एक धक्का-सा लगा। यह सभ्य और शिक्षित समाज है। मैं उठ बैठी, अब रोते रहने से काम नहीं चलेगा। आखिर दीपू का भी तो पालन-पोषण करना है। तब? मैंने सिलाई करके जीवन निर्वाह की सोची और दूसरे दिन से ही अड़ोस-पड़ोस से कपड़े सिलाई के लिए लाने लगी। किन्तु विपत्ति कभी अकेले नहीं आती। अतः मुझ पर भी पहाड़ टूटने लगे।

मुझे सिलाई का काम शुरू किये अभी एक सप्ताह भी नहीं हो पाया था कि मकान मालिक आ पहुंचा। पति की बीमारी के कारण पांच महीने का किराया रुक गया था। बीमारी की हालत में तो सेठ खामोश रहा। शायद चंगे हो जाएं। किन्तु अब क्या आशा थी। वैसे मेरे पति के बहुत कुछ अहसान सेठ पर थे, किन्तु वह तव उनके ही साथ लद गये। अब तो सेठ को पांच महीने का बकाया 1000 रुपये चाहिए थे।

सेठ ने कड़कड़ाती हुई आवाज में मुझसे कहा, "मेरा मुंह क्या ताकती हो। रुपया निकालो।" मैंने सिसकियां भरते हुए सेठ से कहा—मैं आपका सब बकाया चुका दूंगी किन्तु

इस समय तनिक दया कर दीजिए। बीमारी में बड़ा खर्च हो चुका है। अब मेरे पास एक पैसा भी नहीं बचा है, लेकिन धीरे-धीरे करके सब चुका दूंगी।

सेठ ने माथे पर बल डालते और भवें तानते हुए कहा, मैं किस्ते नहीं बांटता हूं जो थोड़ा-थोड़ा ले लूं। मेरा सारा बकाया आज और अभी दो और मकान खाली कर दो।

इसके बाद मैं सेठ के सामने रोई और गिड़गिड़ाई। मैंने सेठ के हाथ-पैर जोड़े और मिन्नतें भी की किन्तु सेठ न पसीजा। उसने अपने पिछले किराये में जो थोड़े-बहुत बर्तन बचे हुए थे अपने कब्जे में कर लिये और कमरे में अपना ताला डाल दिया।

सेठ कच्ची गोली खेलने को तैयार न था। जिस कमरे के हम 200 रुपये मासिक दे रहे थे वही कमरा अब आठ सौ रुपये महीने पर उठ रहा था और पांच हजार रुपये पगड़ी के अलग मिल रहे थे।

मैंने पुनः अन्तिम बार साहस बटोर कर रोते हुए कहा—ईश्वर से तनिक डरो सेठ, मुझ अबला को यहां परदेश में भिखारी न बनाओ। सेठ का नौकर हजार रुपये में तीन हजार रुपये से अधिक का माल लेकर जा चुका था। अतः सेठ ने चेहरे पर कुछ उदारता के से भाव लाते हुए कहा क्यों नहीं तुम अपने देश गांव चली जाती हो। वहां तुम्हारे और रिश्ते-नातेदार होंगे ? यहां तो परदेश है। कहां तक मारी-मारी फिरोगी और फिर आज कल जमाना खराब है। तुम जैसी जवान औरत का अकेले रहना भी ठीक नहीं है।

मेरे हृदय पर सेठ के अन्तिम शब्द तीर की तरह लगे। मैं एकदम घायल हिरणी की तरह तड़पी और चाहा कि सेठ के मुंह पर एक तमाचा रसीद कर दूं जो सारा पैसे का घमण्ड दूर हो जाय। लेकिन अपनी बेबसी को देखकर खून का-सा घूंट पीकर खामोश रह गई।

सेठ ने घायल शिकार पर और दूसरा तीर छोड़ा। वह बोला अब रोने से वह आदमी तो लौटेगा नहीं, लेकिन हां ! दुनियादारी तो करनी ही होती है। मेरी राय में तो तुम आज ही अपने गांव चली जाओ और जो दस-पांच रुपयों की रेल-भाड़े के लिए जरूरत पड़े मुझसे ले लेना।

सेठ चला गया और मैं रोती रही। बराबर के कमरे वालों ने झांक कर देखा और उपेक्षा से मुंह फेर लिया, किराया न देने का फल है।

आज मैं अपना सब कुछ खोकर इस वैभवपूर्ण नगरी में अकेली निराश्रिता निकल चली न जाने किधर को, हां अपने कलेजे के टुकड़े को कलेजे से चिपकाए हुए।

तीन चार दिन तक मैं बाजार में इधर से उधर और उधर से इधर से घूमती रही। किन्तु मुझे कोई ऐसा काम नहीं मिला जिससे क्षुधा शान्त कर सकूं। मैं दिन भर मारी-मारी फिरती और रात को एक बन्द दुकान के तख्ते पर पड़ी रहती। जब दीपू भूख से छटपटाता तो उसे हिला डुला कर सुलाने का निष्फल प्रयास करती। चौथे दिन मुझ में चलने की शक्ति भी नहीं रही। अतः विवश होकर फुटपाथ पर एक खम्बे के सहारे बैठ गई थी।

नर्स को सुधा की कहानी सुनकर बड़ा दुःख हुआ। सुधा धोखे में इस एक्सीडेन्ट के

घायलों के साथ अस्पताल में भर्ती हो गई थी।

अस्पताल में आहार मिला तो सुधा शीघ्र ही चंगी हो गई। लेकिन अब क्या करे, यह समस्या हल न हो सकी। उस नर्स ने सुधा को भी नर्स बन कर ही समाज की सेवा करने की सलाह दी और सुधा ने नर्स का काम सीखना प्रारम्भ कर दिया। कुछ महीने बाद सुधा अस्पताल में कार्य करने लगी। सुधा को अब रहने के लिए सरकारी क्वार्टर भी मिल गया और वह शांति के साथ जीवन-यापन करने लगी। अब उसके दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष हवा की तरह निकलने लगे।

कितने ही वर्ष बाद, एक दिन शहर में मानव, मानव के रक्त से होली खेल रहा था। गाड़ी, मोटर, ट्राम और रेल जहाँ भी जो मिलता था मौत के घाट उतारा जा रहा था। हथियार और सोडावाटर की बोतलों का खुला प्रयोग हो रहा था। मनुष्य, मनुष्य के ही खून का प्यासा बन गया था। सुधा ने यह सब सुना और अवाक सी रह गई। देखते-देखते बड़ा अस्पताल घायलों से भर गया। यह देख कर सुधा का नारी हृदय सिहर उठा। उफ! मानव हत्या।

एक युवक के सिर में पट्टी बांधते हुए डाक्टर ने कहा कोई आशा नहीं, यदि जल्दी खून नहीं दिया तो हार्ट फेल हो जाएगा। लोगों ने डाक्टर की बात सुनी किन्तु मुस्करा कर रह गये। मानो कह रहे हों कि हम ही मारे और फिर हम ही अपना खून दें, सांप के बच्चे को···

थोड़ी देर बाद डाक्टर उस युवक के शरीर में खून पहुंचा रहा था। लोगों ने देखा तो ताकने लगे। किसने खून दिया ? एक दूसरे से प्रश्न कर रहे।

सिस्टर ! तुमने यह अच्छा नहीं किया।

क्यों ?

एक विजातीय युवक को···

अस्पताल में मरने वालों की केवल एक जाति होती है, रोगी या घायल···। सुधा ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

लेकिन अब तुम्हारे प्राण संकट में जो पड़ गये। उसने चिन्ता के से भाव प्रकट करते हुए कहा।

नर्स का कर्त्तव्य होता है कि रोगी या घायल को स्वस्थ करने में जी जान लगा दे। सुधा ने गम्भीर होकर कहा। लेकिन···

लेकिन, वेकिन मैं कुछ नहीं मानती, मैंने केवल एक घायल युवक के प्राणों की रक्षा हेतु अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। मैं नहीं जानती वह किस जाति या किस धर्म का है और न मैं जानना ही चाहती हूं।

सुधा के चेहरे पर प्रसन्नता और आत्म सन्तोष की लहर दौड़ गई। युवक स्वस्थ हो गया। नगर में यह समाचार बिजली की तरह फैल गया और जिसने भी सुधा जैसी देवी के के इस 'रक्तदान' की बात सुनी वह दर्शनों के लिए अस्पताल की ओर दौड़ पड़ा।

धन कमाने की मशीन

अगली पढ़ाई के लिए संजय अपनी मनपसंद लाइन सिविल इंजीनियरी की वकालत बड़ी योग्यता से कर रहा था। लेकिन जब संजय के कानों में पिता जी के यह शब्द पड़े तो चौंक पड़ा। बदला ! कैसा बदला ! मुझे डाक्टर बनाकर किससे बदला लेंगे। संजय के मस्तिष्क में उलझन-सी पैदा हो गई। उसने पिता जी से बहस करते हुए कितनी ही बार कहा था कि अब हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है। इसके नव निर्माण के लिए जितनी जरूरत इंजीनियरों की है उतनी डाक्टरों की नहीं। संजय ने अपने तर्क की पुष्टि के लिए गांवों के उदाहरण पेश किये जहां न डाक्टर होते हैं और न रोगी ही।

प्रेम बाबू संजय के तर्कों से प्रभावित हुए अथवा नहीं, यह कहना कठिन है किन्तु वह संजय के इस आवेश भरे वाक्य से कि—क्या आप मुझे धन कमाने की मशीन बनाना चाहते हैं— बड़े मर्माहत हुए थे। नहीं बेटा मुझे गलत मत समझ। मैं तुझे धन कमाने की मशीन नहीं बनाना चाहता। मैं तो चाहता था कि तू उन निर्धन और बे-आसरे रोगियों की सेवा कर एक नया आदर्श प्रस्तुत करे बेटा। मेरा कलेजा···।" प्रेम बाबू ने अपनी बीती हुई कहानी को प्रकट नहीं होने दिया और उन्होंने उसे मनपसन्द लाईन सिविल इंजीनियरी में जाने की अनुमति दे दी। परन्तु न मालूम क्यों आज संजय को इस सफलता पर प्रसन्नता नहीं हुई।

संजय अपने पिता के स्वभाव को जानता था। उन्होंने अपने व्यवहार से कभी माता का अभाव नहीं खटकने दिया था। इसलिए संजय किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। पिता जी ने इस समय यह आज्ञा नहीं दी है, बल्कि मेरी जिद्द रखी है। उसे अपनी जिद्द के लिए पश्चाताप हो रहा था। उसका मन करने लगा कि वह तुरन्त उठकर पिता जी के पैर पकड़ कर खूब रोये। किन्तु वह केवल 'पिताजी' ही कह पाया। वह पिता जी के हृदय को दुखी कर सिविल इंजीनियरी तो क्या स्वर्ग का सुख भोगने को भी तैयार नहीं था।

अगले दिन पिता जी ने कहा बेटा, उठो ! तुम्हारी ख्शी में मेरी खुशी है। तुम मेरे कहने का बुरा मत मानो। मेरे हृदय में एक पुरानी चोट थी जिसकी वजह से मैं डाक्टरी पढ़ाना चाहता था। प्रेम बाबू खामोश हो गये। मानो कोई न कहने वाली बात मुंह से निकली जा रही हो। वह पिछली बातें कहकर संजय के कोमल हृदय को बोझिल नहीं बनाना चाहते थे, किन्तु अब छिपाना कठिन था। संजय गीली आंखो से बड़ी आतुरता से अपने पिता जी के मुंह की ओर ताक रहा था।

प्रेम बाबू ने अपनी पिछली दर्द भरी कहानी आज पहली बार संजय को सुनाई। उन्होंने कहा—"बेटा ! कुछ वर्ष पूर्व हमारे इसी नगर में हैजे का प्रकोप हुआ था। कुछ लोग

अपने घरों को छोड़कर भाग गए थे। हम भी यहीं रह जाने वालों में थे। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था। एक को शमशान पहुंचाकर लौटते कि दूसरे की टिकटी बंधती दिखाई देती। उस समय किसी को समझ नहीं आ रहा था कि वह क्या करे और क्या न करे। डाक्टरी के नाम पर डाक्टर लोग मानवता के साथ खिलवाड़ कर रहे थे। सरकारी अस्पताल में स्थान नहीं था और प्राइवेट डाक्टरों ने इस ईश्वरदत्त अवसर से लाभ उठाने की ठानी थी।

उस समय नगर में गिने-चुने प्राइवेट डाक्टर थे। वैसे तो इन डाक्टरों में परस्पर अनबन रहती, लेकिन हैजे के दिनों में सब एक हो गये थे। उन्होंने हैजे के मरीज को देखने जाने की फीस दुगुनी कर दी थी। बेटा, मुझे तो कहने में भी शर्म आ रही है। उस समय धन के लोभ में डाक्टर लोग अपने को कलंकित कर रहे थे। एक दिन अचानक तेरी माँ और बड़े भाई अतुल को इस महामारी ने आ दबाया। मैंने बड़ी दौड़-धूप की, पैसे भी खर्च करने की हिम्मत की, किन्तु…।"

प्रेम बाबू का गला भर गया। संजय ने अपनी आंखें पोंछी। प्रेम बाबू ने एक क्षण रुकने के बाद फिर कहा—"बेटा, होता तो सब भाग्य से है किन्तु डाक्टरी सहायता मिल जाये तो मन की तमन्ना निकल जाती है। अतः इसी आशा से मैं डाक्टर के यहां पहुंचा। डाक्टर दोपहर का खाना खाकर आराम कर रहा था। मैंने कितनी ही खबरें अन्दर पहुंचायी, लेकिन वह अपने निश्चित समय से पहले बंगले से बाहर नहीं निकला। इस समय तक रोगियों की खासी भीड़ लग चुकी थी।

जब डाक्टर बाहर आया तो एक कार उसे लेने आ गयी। डाक्टर आधे घन्टे में वापस आने का वायदा करके चला गया। "उस समय मेरे मन में आया था कि क्यों न मैं तुम्हें डाक्टरी पढ़ाऊं। मैं डाक्टरी का एक ऐसा आदर्श उपस्थित करना चाहता था कि लोग समझ जायें कि डाक्टर कारों में घूमने वालों को नहीं कहते हैं। लेकिन खैर। भगवान की जैसी इच्छा।"

संजय पिता जी के पैर पकड़कर रोने लगा। वह सचमुच अपने पिता को समझते हुए भी अब तक नहीं समझा था। प्रेम बाबू ने उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और बोले—"बेटा! तूने ठीक ही कहा है कि डाक्टरी पैसा कमाने का धन्धा बन गया है। इन लोगों के मन में दया, धर्म अथवा सेवा और सहानुभूति की भावना तो बिलकुल लुप्त हो गयी।"

कुछ दिन बाद प्रेम बाबू की कोशिश और दौड़-धूप से संजय को मेडीकल कालेज में दाखिला मिल गया। जब संजय डाक्टरी पास करके आया तो प्रेमबाबू ने अपने मकान को ही क्लीनिक बना दिया और स्वयं रोगियों की सेवा करने लगे।

एक वर्ष बीतते न बीतते देश पर राजनीतिक काली घटायें छाने लगीं। समूचे देश में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' छिड़ गया। संजय का कस्बा भी इन लपटों से न बच सका। चारों ओर पुलिस का लाठीचार्ज और गोलियों की धांय-धांय। लोग सिहर उठे। जब संजय को

घायलों का पता लगा तो वह मरहम-पट्टी का जरूरी सामान लेकर घटना स्थल पर जा पहुंचा। पुलिस के लिए संजय की यह हरकत असह्य हो गई। जहां बड़े-बड़े डाक्टरों का आने का साहस नहीं, वहां यह कल का छोकरा।

थानेदार ने दांत पीसते हुए कहा, वड़ा डाक्टर बना है और उसी रात को संजय का मकान पुलिस ने ऐसे घेर लिया मानों डाकुओं के किसी सशस्त्र दल को घेरा हो। संजय आधी रात को गिरफ्तार कर लिया गया। उसकी गिरफ्तारी की खबर अगले दिन प्रातः ही नगर में बिजली की तरह फैल गई। देखते-देखते ही संजय के मकान के सामने जन-समूह उमड़ने लगा।

संजय की गिरफ्तारी पर पूर्ण हड़ताल, शाम को जलूस और सभा हुई। पुलिस अधिकारियों के पास भी 'उचित कार्यवाही' करने के आदेश थे। अतः फिर लाठीचार्ज और धांय-धांय गोलियाँ चली। संजय का क्लीनिक आज घायलों से भर गया। बेचारे प्रेमबाबू कम्पाउंडर के साथ घायलों की पट्टियां बाँध रहे थे, तभी नगर के प्रमुख व्यक्तियों के एक दल ने क्लीनिक में प्रवेश करते हुए आवाज दी—"प्रेम बाबू।"

प्रेम बाबू के सामने आगन्तुकों ने हाथ जोड़कर कहा, "हम लोग निश्चय करके आये हैं कि संजय बाबू के इस क्लोनिक को यहां के लोग बराबर चलाते रहेंगे। उन्होंने गरीबों की सेवा का जो व्रत लिया है उस भंग न होने देंगे।"

"भाई, हाथ पैर की सेवा तो हम लोग कर सकते हैं लेकिन डाक्टर के बिना मरीजों को दवा कौन तजबीज करेगा।" प्रेमबाबू ने उदास मन से कहा। "इसके लिए भी हमने महावारी चंदा निश्चित कर लिया है। इससे एक डाक्टर की व्यवस्था आसानी से की जा सकेगी।" उन्हीं सज्जन ने कहा।

"वेतन भोगी डाक्टर?" प्रेम बाबू ने आश्चर्य से चौंक कर पूछा। "नहीं।" यहां एक अवैतनिक डाक्टर ही सेवा करेगा। एक नये व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा। सबने मुड़कर देखा। नगर के प्रमुख डाक्टर नवीनचन्द्र खड़े मुस्करा रहे थे।

"जी हां। इस अस्पताल की देखभाल अब मेरे जिम्मे रहेगी और मैं इसके बदले कोई पैसा नहीं लूंगा।" डाक्टर साहब ने गम्भीर मुद्रा में कहा। बैठे हुए लोग एक दूसरे का मुंह देखने लगे, मानों उन्हें अपने कानों पर विश्वास न हो रहा हो। जो डाक्टर अभी तक बिना फीस लिए किसी मरीज से बात नहीं करता था, वह अब बिल्कुल मुफ्त सेवा करेगा? और वह भी दूसरे डाक्टर के क्लीनिक में।

प्रेम बाबू का हृदय श्रद्धा से भर गया और उन्होंने चाहा कि वह तुरन्त जाकर डाक्टर साहब के पैर पकड़ ले। "आप मनुष्य नहीं देवता हैं।" प्रेम बाबू ने गद्गद होते हुए कहा। "नहीं यह मेरा मनुष्य बनने के लिए पहला कदम है।" डाक्टर साहब ने हंसकर उत्तर दिया।

शिकायत की लत

गोविन्द बाबू सरकारी दफ्तर में काम करते थे और अपनी आमदनी के अन्दर ही ही अपने छोटे से परिवार का काम चलाते थे। गोविन्द बाबू के परिवार में विभा और रानी के अतिरिक्त उनकी वृद्धा माता थीं। जब गोविन्द बाबू के विवाह के तीन वर्ष बाद भी कोई संतान नहीं हुई तो गोविन्द बाबू ने विभा को लेकर डाक्टरों और हकीमों के यहां खाक छानी और दूसरी ओर वृद्धा माता ने तरह-तरह की मनोतियां मांगी। कहीं डोरा बांधा तो कहीं गंगा में मेड़ बांधी, महावीर जी को चोला चढ़ाया तो कहीं दरगाह पर चादर चढ़ाई। उन्होंने घर में बच्चे का मुँह देखने के लिए कोई कसर नहीं रखी।

बड़ी मुश्किल से विवाह के 8 वर्ष बाद इस बच्ची का मुंह देखने को मिला था। इसलिए रानी के साथ लाड़ प्यार का व्यवहार होता था। रानी, दादी की लाड़ली और गोविन्द बाबू की आंखों की तारा थी।

जब रानी छोटी थी तो एक दिन गोविन्द बाबू के घर में प्रवेश करते ही रानी ने अपनी तोतली बोली में मम्मी की शिकायत की। "पापा! मम्मी ने हमें आज खूब माला है औल आम भी नहीं दिए।" गोविन्द बाबू ने साईकिल चौक में ताला लगाकर स्टैन्ड के सहारे खड़ी की और रानी को गोद में उठाकर चूम लिया। रानी ने फिर अपनी शिकायत दोहराई।

"अच्छा बुलाओ अपनी मम्मी को, मैं अभी उनकी खबर लेता हूं। मेरी रानी को क्यों मारा है?" गोविन्द बाबू ने गोदी में से रानी को उतारते हुए कहा। रानी खुश हो भागती हुई रसोई में पहुंची और मम्मी को जरनेली हुकुम कह सुनाया। विभा एक हाथ में नाश्ते की ट्रे और दूसरे हाथ में केतली उठाकर गोविन्द बाबू के कमरे की ओर चल दी। आगे-आगे रानी मम्मी की धोती का पल्ला पकड़े, बड़ी अकड़ से ऐसे चल रही थी मानो पुलिस का सिपाही किसी बड़े मुल्जिम को पकड़कर थाने ले जा रहा हो।

जैसे ही रानी ने कमरे में प्रवेश किया, तभी गोविन्द बाबू ने रोष प्रकट करते हुये विभा को डांटा, "क्यों जी तुमने मेरी रानी को क्यों मारा, तुम नहीं जानतीं यह रानी बेटी है। खबरदार जो कभी उसे मारा।" रानी का चेहरा खिल उठा।

विभा ने रसोई में से लाकर एक बड़ा आम प्लेट में रखा। गोविन्द बाबू ने स्वयं अपने हाथ से छील-काटकर आम रानी को खिलाया। रानी खुशी-खुशी नाश्ता करने लगी।

रानी अपने परिवार में इतनी चहेती हो गई थी कि मुँह से बात निकलने की देर

होती कि सब लोग उसकी इच्छा पूरी करने के लिए दौड़ पड़ते थे। रानी इस व्यवहार की ऐसी आदी हो गई कि यदि कभी उसकी इच्छा पूरी होने में कसर रह जाती तो वह तुरन्त मम्मी की शिकायत पापा से और पापा की शिकायत दादी से करती। दादी की कचहरी में तो सदैव फैसला रानी के पक्ष में होता।

धीरे-धीरे रानी की शिकायत करने की आदत ही बन गई और बिना बात को लेकर भी मम्मी की शिकायत पापा से और पापा की शिकायत दादी से करने लगी। जब तक एक दूसरे में कहा-सुनी नहीं करा देती तब तक उसे चैन नहीं पड़ता था। अब वह स्कूल में लड़कियों की शिकायत अध्यापिकाओं से और घर पर नौकरों की शिकायत मम्मी या पापा से करने में नहीं चूकती थी। यहीं तक नहीं, पड़ोस के बच्चे की शिकायत करने में भी मजा आता था।

अचानक एक दिन गोविन्द बाबू के दफ्तर जाने के बाद बाहर के चौक में विभा के चिल्ला-चिल्ला कर बोलने की आवाज सुनाई दी। मैं जो पड़ोस में रहता था दफ्तर जाने की तैयारी में था, अतः कमीज गले में डालता हुआ बाहर निकला। विभा हमारे बच्चों पर नाराज हो रही थी। कारण पूछने पर मालूम हुआ कि हमारे बच्चे हर दूसरे तीसरे दिन गोविन्द बाबू की साईकिल के वाल ट्यूब और डिबरी निकाल लेते हैं जिसकी वजह से उन्हें दफ्तर पहुंचने में देर हो जाती है। यद्यपि मुझे विश्वास था कि यह शरारत मेरे बच्चों की नहीं हो सकती, फिर भी शिष्टाचारवश मैंने उनसे कह दिया मैं अपने बच्चों से पूछूंगा।

अगले दिन मैं प्रातः गोविन्द बाबू की साइकिल देखता। दो चार दिन बाद मुझे शरारत करने वाले का पता चल गया। अब अगर किसी दिन उनकी साइकिल की डिबरी या बाल ट्यूब गायब होता तो मैं अपनी साइकिल में से निकालकर लगा देता और हवा भर देता था। विभा समझती थी कि यह उस दिन की डांट का फल है, बच्चे डर गये हैं।

कुछ दिन बाद एक दिन रानी को तेज बुखार हो गया। गोविन्द बाबू सरकारी काम से कहीं बाहर टूर पर गये हुए थे। अतः विभा रात को साढ़े 9 बजे घबराई हुई आई। मैंने तुरन्त डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने दवा और इन्जेक्शन दिए। डाक्टर ने तसल्ली देते हुए कहा, घबराने की बात नहीं है, ठीक हो जायेगी।

जब डाक्टर जाने लगे तो विभा को फीस देने की याद आई। उसने अपना बक्स खोला, लेकिन रुपये पूरे नहीं थे, अतः उसने रानी के बक्स में से रुपये निकालने की सोची। रानी के पास इधर-उधर से मिले हुए रुपये रखे रहते थे। जब कभी विभा को जरूरत होती थी तो ले लेती थी और कुछ बढ़ाकर फिर रानी के पास रखा देती थी। इस तरह वक्त जरूरत विभा का काम चल जाता और रानी की पूंजी भी बढ़ती रहती थी। विभा ने रानी का पर्स निकाला और हमारे कमरे में आकर मेज पर पलटकर रेजगारी में से रुपये बीनने लगी।

लेकिन विभा चौंक पड़ी। उसके पर्स में रेजगारी के साथ-साथ बहुत से वाल ट्यूब और डिबरियां भी निकलीं।

अब सुधा को डिबरी की चोरी की बात समझने में देर नहीं लगी। लेकिन यह हुआ क्यों, विभा के लिए पहेली बन गई। मैंने कहा, वह रानी से या किसी और से इस बारे में कुछ न कहें। दो-तीन दिन में रानी स्वस्थ हो गई और पहले की तरह खाने-खेलने लगी।

एक दिन गोविन्द बाबू शाम को चाय पीते समय एक पुड़िया में वाल ट्यूब और डिबरियां अपनी जेब से निकालकर रानी को देते हुए बोले—"लो बेटी, यह डिबरियां अपने अंकल को दे आओ। उन्होंने अपनी साईकिल से निकालकर मेरी साइकिल में लगाये थे।" पापा की बात सुनकर रानी सकपका गयी। वह डिबरियों वाली घटना को भूलती-सी जा रही थी, लेकिन अचानक आज इस रूप में सामने आने पर वह कुछ न बोल सकी। थोड़ी देर में वह डिबरियों की पुड़िया लेकर मेरे पास आई और पुड़िया मेरी ओर बढ़ा दी। उसकी आंखों में आंसू थे। मेरे बहुत आग्रह करने पर उसने केवल इतना कहा, "पापा ने यह भेजीं हैं" और फूट-फूट कर रोती हुई मेरी गोद में गिर पड़ी।

उसने बताया जिस दिन पापा मेरे कहने पर कोई चीज नहीं लाते थे तो मैं बदला लेने के लिए उसी रात को उनकी साइकिल की डिबरी निकाल देती थी। अगले दिन जब वह परेशान होते तो मुझे मजा आता। इसके अतिरिक्त मुझे शीला और रमेश की शिकायत करने का भी अवसर मिलता था। मैं सोचती थी मेरी शिकायत पर आप अपने बच्चों को जरूर डाटेंगे लेकिन···।" वह सिसकियां भरती बोली—"आपने न तो अपने बच्चों को डांटा और न मुझे ही कोई सजा मिलने दी।" सचमुच रानी अपनी इस कुटेव पर लज्जित थी। इसके बाद फिर डिबरी की चोरी की बात सुनने में नहीं आई।

मेहनत का फल

बद्री, दौलतपुर गांव के एक गरीब परिवार का युवक था। बचपन में माता पिता को मृत्यु हो गयी थी। अतः इसे भैया-भाभी के साथ रहना पड़ा था। इसे पढ़ने का शौक था लेकिन भाई इसे अपने साथ खेती-वाड़ी के काम में लगाये रहता था। कुछ दिन वाद रिश्ते की बुआ ने इसकी शादी अपनी जान-पहचान की एक लड़की से करा दी। शुरू-शुरू में बद्री और उसकी पत्नी दोनों ने भैया-भाभी की खूव सेवा की।

लेकिन यह माहौल अधिक दिन तक न रह सका। घर में छोटी-छोटी बात पर चख-चख होने लगी। बड़ा भाई थोड़ा पढ़ा-लिखा और चंट था इसीलिए उसने पटवारी के कागजों में जमीन-जायदाद पर बद्री का नाम कटवा दिया था। जब वद्री को भाई की इस चालबाजी का पता लगा तो उसने गांव के वड़े-बूढ़े लोगों से शिकायत की। इसके पास मुकदमा लड़ने को पैसा नहीं था, इसलिए पटवारी के कागजों को कोई ठीक नहीं करवा सका। इसके बाद भाई-भाभी ने मिलकर इन लोगों को घर से निकालने की योजना बना ली थी।

आज झगड़े में भाई ने ग़ाली-गलौज के वाद उसके दो हाथ भी मार दिये थे। अतः आज उससे यह अपमान बर्दाश्त नहीं हुआ था। कभी-कभी छोटी-सी बात भी मनुष्य को बढ़ा संकल्प करने को मजबूर कर देती है।

इस झगड़े के बाद बद्री ने अलग रहने का निश्चय कर लिया। उसने अपनी पत्नी को रिश्ते की बुआ के यहाँ पहुंचा दिया और खुद मेहनत-मजदूरी करने के लिए शहर को चल पड़ा। जब वद्री भाई भाभी से बिदा लेने गया तो उसे आशा थी कि अब तक भाई का गुस्सा शान्त हो गया होगा। शायद वह उसे शहर जाने से रोकेगा। लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ नहीं कहा। बद्री उनकी इस अकड़ को देखकर समझ गया कि उन्होंने उसके हिस्से की खेती-बारी तो पहले ही छीन ली है। अब उसे घर से भी बेदखल करके पूरा कब्जा करना चाहते हैं।

बद्री ने सोचा, ठीक है अब मैं भी इन्हें दिखा दूंगा कि मैं जमीन-जायदाद का भूखा नहीं हूँ। अपने हाथ-पांव से कमाकर पेट भर सकता हूं। फिर भी वह रास्ते भर वह मुड़-मुड़कर पीछे देखता रहा कि शायद भाई उसे रोकने आ जाये।

जब पक्की सड़क पर पहुंचने पर भी कोई आता दिखाई नहीं दिया तो वह तेजी से शहर की ओर कदम बढ़ाने लगा। शाम होते-होते वह शहर की सीमा में दाखिल हो गया। संयोग से इसी शहर में उसके गांव का मिस्त्री रामदीन रहता था था। अतः वह खोज करता हुआ उसी के पास जा पहुंचा।

रामदीन अच्छे स्वभाव का था अतः उसने बद्री को दो एक दिन बाद ही एक फैक्ट्री

में काम दिला दिया। बद्री खेती के कामों में लगे रहने की वजह से पढ़ नहीं सका था। लेकिन मेहनती था इसलिए उसने लेबर में भर्ती होने पर भी जल्दी ही तरक्की कर ली।

जब बद्री अपनी पहली तनख्वाह के पांच-पांच के आठ नये नोट लेकर अपने गांव के लिए चला तो उसका मन खुशी से उछल रहा था। अब वह इन नये नोटों को अपनी पत्नी के हाथ में रखेगा तो वह कितनी खुश होगी। बद्री रास्ते भर यही सोचता हुआ कब गांव जा पहुंचा इसका उसे पता ही नहीं चला।

बद्री मेहनती और मिलनसार था इसलिए उसने फैक्ट्री का सारा काम बहुत जल्दी सीख लिया। एक वर्ष में ही इसकी तनख्वाह भी दुगनी, अस्सी रुपये हो गई। उसे रहने को एक छोटा-सा क्वार्टर मिल गया और वह अपनी पत्नी को गांव से ले आया।

अब दोनों यहां बहुत खुश थे। बद्री ने गांव में रहकर स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। लेकिन यहां आकर उसने साथियों से इतना पढ़ लिया था कि अखबार बखूबी पढ़ने लगा था। उसकी रुचि देश की गति-विधियों की जानकारी हासिल करने के लिए बढ़ने लगी थी, वह रेडियो की खबरें सुनता और जहां कहीं ऐसी चर्चाएं होता देखता वहीं रुककर कुछ समझने की

कोशिश करता। अब वह सभा-सोसाइटी और जलसों में भी शरीक होने लगा। उसे बोलने चालने का अच्छा शऊर आ गया था। वह दो-तीन वर्ष बाद ही गांव का अल्हड़ युवक फैक्ट्री का समझदार कर्मचारी बन गया था।

कुछ समय बाद देश अंग्रेजों की हुकुमत से आजाद हुआ। 15 अगस्त 1947 को समूचे देश में खुशियां मनाई जाने लगीं। बद्री के फैक्ट्री में भी छुट्टी रखी गई। मिठाइयां बंटीं जलसे हुए तथा रात को रोशनी की गई।

नेताओं ने आकर आजादी के महत्त्व पर प्रकाश डाला और आजादी मिलने के बाद के कर्तव्य और अधिकारों की चर्चा की। आज के दिन फैक्ट्री के तमाम छोटे-बड़े अफसरों एवं काम करने वाले मजदूरों को मालिक की तरफ से प्रीत-भोज दिया गया, जिसमें हर जाति, धर्म के छोटे-बड़े लोगों ने एक पंक्ति में बैठकर साथ-साथ भोजन किया।

उस समय देश भर में एक खुशी तथा उत्साह था। देश भक्तों एवं स्वतन्त्रता-संग्राम-सेनानियों के बलिदान और कुर्बानियों का मीठा फल आजादी के रूप में उनके सामने था। लेकिन इस मीठे फल में थोड़ी सी कड़वाहट भी पैदा हो गई थी।

अंग्रेजों ने सत्ता सौंपने से पूर्व ही देश के दो टुकड़े करने की योजना बना ली थी, जिसके परिणामस्वरूप देश में खून की नदियां बहने लगी। मानव मानव के खून का प्यासा हो गया था।

यह देखकर बद्री की समझ में नहीं आ रहा था। वह अपने साथियों से कहता कि हम काम करने वालों, मजदूरी करके पेट भरने वालों का तो एक ही धर्म और एक ही जाति है लेकिन इन विनाशकारी लपटों से यह फैक्ट्री अछूती नहीं रह सकी। लोगों ने देखा कि एक दिन कुछ अनजाने लोगों ने हथियारों से लेस होकर फैक्ट्री पर हमला बोल दिया। तोड़-फोड़ और लूट के बाद लोगों ने जगह-जगह आग लगा दी।

बद्री ने अपने साथियों के साथ हमलावारों का मुकाबला करके फैक्ट्री को बड़ा नुक-सान होने से बचा लिया, लेकिन वह बुरी तरह घायल होकर बेहोश हो गया। जब उसे होश आया तो वह अस्पताल में था। उसके इलाज का सारा खर्चा फैक्ट्री की ओर से किया गया था।

जब बद्री स्वस्थ हो गया तो फैक्ट्री में हुए एक जलसे में उसकी ईमानदारी मेहनत और वफादारी के लिए पदोन्नति तथा नकद इनाम देकर सम्मानित किया गया।

चर्खा यज्ञ

अनिल एक धनवान वकील का इकलौता पुत्र था। उसकी माता उसे बचपन में ही छोड़ गई थी इसलिए पिताजी ने उसे पाला था। पिता ने अपने ममता भरे व्यवहार से अनिल को मां का अभाव नहीं खटकने दिया था। उन्होंने अनिल की हर इच्छा को पूरा करने के लिए पैसा पानी की तरह बहाया था। अनिल पढ़ने-लिखने में तेज था। वह इस वर्ष एम० ए० के साथ 'लॉ' की परीक्षा भी दे रहा था।

डेढ़ सौ वर्ष की गुलामी के बाद देश अंग्रेजों के चंगुल से आजाद हुआ था। इसलिए इस वर्ष गांधी जयन्ती विशेष धूम-धाम से मनाई जा रही थी। उस दिन जनता में तथा कालिज के छात्रों में बड़ा उल्लास था। अनिल ने आज भी रोज की तरह सूत काता और यर्वड़ा चक्र (चर्खा) बन्द कर अलमारी में रख दिया और गोविन्दपुर गांव की तरफ चल दिया।

लेकिन इधर दो-तीन वर्षों से अनिल के स्वभाव में कुछ विचित्र-सा परिवर्तन आ गया था। अब वह पिताजी से सूट या जूतों की फर्माईश नहीं करता था, बल्कि पिताजी के पूछने पर भी इन्कार कर देता था। उसने सूट-बूट की जगह खादी का कुर्ता-पाजामा पहनना शुरू कर दिया था। वह अब सादगी से रहने लगा था।

कालिज के लड़के उसे इस हुलिया में देख नेताजी कहकर खिल्ली उड़ाते। वकील साहब भी उसे इस अवस्था में देखते तो थे। लेकिन दुःखी होकर अनिल से कहते कि जब भगवान् ने तुम्हें सब कुछ दिया है तो फिर यह फकीर बने क्यों घूमते हो। तुमसे अच्छे ठाठ-बाट से तो हमारे मुंशी जी का लड़का रहता है।

अनिल के दिमाग में खादी, चर्खा ओर ग्राम-सुधार की धुन कब और कैसे पैदा हुई यह कोई नहीं जानता। लेकिन लोग दो-तीन वर्षों से उसे हर छुट्टी के दिन गोविन्दपुर गांव जाते देख रहे थे।

गोविन्दपुर गांव में अधिकतर बस्ती गरीब हरिजनों की थी। शायद इसलिए अनिल ने इस गांव को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था। उसने उस छोटे-से गांव में बालकों के लिए सफाई, पढ़ाई और दस्तकारी सिखाने को स्कूल खुलवाया तथा प्रौढ़ों को भी पढ़ाने का सुझाव दिया था।

पहले तो गांव वालों ने अनिल को शक की निगाह से देखा था लेकिन बाद में वे उसके मृदुल स्वभाव तथा सेवा की भावना से प्रभावित होने लगे थे। धीरे-धीरे लोगों का शक स्नेह में तब्दील होने लगा। वह अब उनके परिवार का एक सदस्य बन गया। लेकिन होस्टल के

साथी उसकी इस सादगी और ग्राम सेवा को ढोंग और कालेज की राजनीति में साथियों में प्रभाव जमाने की चाल समझते थे।

कालिज के साथियों में हरीश अपने को कामरेड कहलाना पसन्द करता जबकि उसका प्रतिद्वन्द्वी राजेन्द्र समाजवाद का नारा बुलन्द करता था। इनका एक साथी मुकन्दी और था जो कालेज की राजनीति में अपने को स्थिर नहीं कर पाता था। लेकिन अनिल के विरोध करने में तीनों मिलकर एक स्वर में बोलते थे।

वह लोग कहते, चूंकि अब देश आजाद हो गया इसलिए चर्खे, खादी और बैलगाड़ी की बात सोचना देश को पीछे ढकेलना है। आज हमें विज्ञान की तरक्की करनी है। लोग ऐसे भाषणों पर तालियां बजाते। लेकिन अनिल की दिन-चर्या पर उसका प्रभाव नहीं पढ़ता था। उससे जब कोई चर्चा करता तो वह कहता कि मैं विज्ञान की तरक्की के खिलाफ नहीं हूं लेकिन अगर बचे हुए समय को व्यर्थ गंवाने की अपेक्षा दस-पांच गज सूत कात लूं तो इसमें देश की तरक्की कैसे रुक सकती है।

अनिल साथियों को समझाता कि जो लोग हवाई जहाज से यात्रा करके समय बचाते हैं लेकिन उस कीमती समय को गप्प-शप्प या क्लबों में जाकर कैरम-ताश में बरबाद कर देते हैं। वास्तव में ऐसे लोग विज्ञान द्वारा प्रदत्त लाभ का दुरुपयोग करके देश को आगे बढ़ने से रोकते हैं।

आज की गांधी जयन्ती के उपलक्ष्य में कालिज में होने वाली सभा के लिए कितने ही लड़कों और लड़कियों ने अपने भाषण तैयार किए थे। उनका ख्याल था कि आज की इस सभा में जिस वक्ता की विरोधियों पर धाक जम जाएगी, वही कालिज के अगले चुनावों में कामयाब होगा। इसलिए जो लोग गांधीजी को गालियां देते थे वे आज भी उनके उसूलों की किताबों को ढूंढ़ते फिर रहे थे। आज उन्हें जीवन के मुकाबले में अपने को गांधीजी के उसूलों का पक्का समर्थक होने का सिक्का जमाना था। लेकिन अनिल को कालिज की राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी। अतः वह आज भी अन्य छुट्टियों की तरह प्रातःकाल ही गोविन्दपुर चला गया। गोविन्दपुर पांच मील के फासले पर था।

गोविन्दपुर ग्राम में भी आज काफी चहल-पहल थी। वहां के लोगों ने अपने हाथों से मकानों, नालियों और रास्तों को साफ किया था। और अब तैयार होकर स्कूल के चबूतरे पर एकत्रित हो गए थे। छोटे-छोटे बच्चे भी साफ-सुथरे कपड़े पहने घूम रहे थे। आज गोविन्दपुर में किसी उत्सव का-सा माहौल था। इस समारोह को देखने आस-पास के ग्रामों से भी लोग आ गए थे।

ठीक नौ बजे कार्यक्रम के अनुसार स्कूल के चबूतरे पर चर्खा यज्ञ आरम्भ हो गया। लेकिन लोगों की नजर सड़क की तरफ लगी हुई थी। गांव वालों को शंका थी कि कहीं अनिल भइया शहर में किसी उत्सव में न फंस जायें।

हर छुट्टी की तरह अनिल आज भी अपने निर्धारित समय पर गोविन्दपुर पहुंचा। अनिल को देखते ही बच्चे उछलने लगे, अनिल भैया आ गए। लोगों ने आगे बढ़कर अनिल का स्वागत किया। अनिल भोंचक्का-सा होकर यह सब देख रहा था।

आज अनिल ने जाहिल और गंवार कहे जाने वाले लोगों में आत्मविश्वास पैदा किया, युवकों को अपने पैरों पर खड़े होने का रास्ता सुझाया, बच्चों को शिक्षा दिलाकर उनका भविष्य बनाया तथा नये जीवन का संचार करके गांव की काया पलट दी थी। अतः अनिल को लोग आज गांधी जयंती के अवसर पर हृदय से सम्मानित करना चाह रहे थे।

कालिज में भी गांधी जयन्ती धूम-धाम से मनी। रटे हुए भाषणों में तालियों की गड़गड़ाहट ने कितनी ही बार पंडाल को गुंजा दिया था। वक्ता लोग अपने भाषणों की तारीफ सुनने के लिए आतुर हो रहे थे। लेकिन इस कोलाहल में अनिल का न होना उन्हें अखर रहा था। उन्हें ऐसा लगा कि गांधी जयन्ती के अवसर पर धुंआधार भाषण झाड़ने के बाद भी वह शायद अनिल को हरा नहीं सके हैं। अनिल को अपने उद्देश्य में लगे रहने का संतोष था।

युवक की ईमानदारी

एक छोटे से स्टेशन पर ट्रेन रुकी। एक टिकट-चेकर आ गए। उन्होंने एक तरफ से टिकट चैकिंग शुरू कर दी। पिताजी ने मेरा और अपना टिकिट दिखाया। पर सामने की सीट पर बैठे एक युवक का बुरा हाल था। कभी वह कोट की जेबें देखता, कभी कमीज की और कभी खड़े होकर पैंट की। स्पष्ट था कि वह अपना टिकट तलाश कर रहा था।

"बाबू साहब टिकिट दिखाइये।" चेकर ने कहा।

"जो, टिकिट कहीं गुम हो गया। टिकिट मैंने बटुए में रखा था और अब जेब में बटुआ ही नहीं है।" युवक के इस कथन पर चेकर अविश्वास की हंसी हंसते हुए बोला—"बरखुरदार! ठीक कहते हो। बिना टिकिट सफर करने वाला हर आदमी यही कहता है।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैंने टिकिट अवश्य खरीदा है। किन्तु वह····"

"भाई जान! हमें इससे मतलब नहीं कि आपने टिकिट खरीदा या नहीं। हमें तो आप टिकिट दिखा दें नहीं तो चार्ज दे दें।" टिकिट चेकर ने युवक की बात काटते हुए कहा।

"लेंकिन मेरा तो बटुआ ही किसी ने निकाल लिया।" युवक ने रुआंसी आवाज में कहा।

"मैं यह बकवास नहीं सुनना चाहता। टिकिट दिखाओ या चार्ज दो। मुझे दिन-भर यही स्वांग देखते जो बीतता है।" टिकिट चेकर ने कहा और आगे बढ़ गया।

उस समय मैं लगभग 10 वर्ष का था। पिताजी के साथ आगरा से कानपुर जा रहा था। गाड़ी में भीड़ थी। लेकिन हम दोनों किसी तरह सीट पर एक किनारे बैठ गए।

युवक के लिए यह अपमान असह्य था, किन्तु अपनी सत्यता सिद्ध करने के लिए उसके पास कोई प्रमाण न था। लोग उसे देखकर हंस रहे थे।

जब टिकिट चेकर ने डिब्बे के टिकिट देख लिये तो इत्मिनान से युवक के पास आकर बैठते हुए बोला—"कहिये हजरत! क्या विचार है? चार्ज देंगे या कानपुर स्टेशन पर पुलिस के हवाले करूं?"

"मेरा तो बटुआ ही किसी ने निकाल लिया है। मैं पैसे भी कहां से दूं। हां अगर मेरा विश्वास करें तो मेरे घर का पता नोट कर लीजिए। मैं घर पहुंचते ही पैसे भेज दूंगा।" युवक ने विनम्रता से कहा।

युवक की बात सुनकर चेकर हंसा। सबका ध्यान उसकी ओर था। मेरी नजर अपने पिताजी की ओर थी। उन्होंने लोगों से कहा—"हो सकता है उसने टिकिट खरीदा हो और बटुए में रख लिया हो। बटुए का भी जेब से गिर जाना कोई अनहोनी बात नहीं है।"

डिब्बे के मुसाफिरों की आंखें पिताजी को देखने लगी। टिकिट चेकर कुछ खिसियाए। तेजी से बोले, "हमें इस बात से बहस नहीं कि टिकिट खरीदा या नहीं। हमें तो यह टिकट

Institute of Advanced Study
110671
DATE 17-2-2003
SHIMLA

दिखाये या चार्ज दे दें। बस सीधी-सी बात है, आप चार्ज दे दें। हम तो कानून से बंधे हैं। चार्ज नहीं देंगे तो केस पुलिस के हवाले हो जाएगा। मैं रोज ही ऐसे मामले भुगतता रहता हूं।" कहता हुआ टिकिट चेकर पिताजी को तीखी नजर से देखने लगा। पिताजी ने तुरन्त अपना बटुआ निकाला और चार्ज की रकम टिकिट-चेकर को देकर रसीद ले ली।

संकट-काल में इस प्रकार सहायता से युवक की आंखें गीली हो गयीं। वह कुछ बोल नहीं सका। इतने में कानपुर स्टेशन पर हम लोग उतरे। पीछे-पीछे युवक भी उतरा। उसने बड़ी विनम्रता से कहा, "मैं किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करूं। पर क्या मैं आपका पता जान सकता हूं ?" पिताजी ने मुस्कुराते हुए कहा—"इसकी क्या जरूरत है, मैंने यह रुपये वापस प्राप्त करने की आशा से नहीं दिए हैं। युवक के बहुत आग्रह करने पर पिताजी ने अपना पता बता दिया।

लगभग एक सप्ताह बाद जब हम आगरा वापस लौटे तो मालूम हुआ कि बनारस से एक मनीआर्डर आया है। पिताजी ने मनीआर्डर नहीं लिया और एक पत्र अलग से युवक को लिखा—"तुम जैसे सच्चे और ईमानदार लड़के की जितनी भी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। मैं तुम्हारे इस व्यवहार पर बहुत खुश हूं। अतः इस रकम को तुम मेरी ओर से पुरस्कार मान-कर स्वीकार कर लो। मैं तुम्हारा मनीआर्डर सधन्यवाद वापस कर रहा हूं।"

ठोकर से सबक

संजू एक गरीब परिवार का बालक था। उसके परिवार में माता, पिता, बहिन और एक भाई था। पिता किसी दफ्तर में पचासी रुपये मासिक पर बाबू थे। वे अपने वेतन से किसी तरह इस छोटे से कुटुम्ब का भरण पोषण करते थे। उनके लिए संजू और उसके भाई की पढ़ाई का खर्चा उठा सकना कठिन था किन्तु लड़कों की पढ़ाई में रुचि देखकर बेचारे किसी तरह इस खर्च को बर्दाश्त कर रहे थे।

संजू पढ़ने में बहुत तेज था। जिस दिन वह स्कूल में भर्ती हुआ उस दिन से बराबर प्रथम या द्वितीय श्रेणी में ही उत्तीर्ण होता था। संजू की पढ़ाई को देखकर घर वाले और निकट संबंधी लोग बहुत खुश होते वे और हर वर्ष संजू को सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होने पर शाबाशी और उपहार देते थे। संजू उपहार को देखकर फूला नहीं समाता था और नवीन उत्साह से अगले वर्ष की पढ़ाई में लग जाता था। संजू की पढ़ाई की लगन को देखकर पिता ने सोचा था कि इसे ऊंची शिक्षा दिलायेंगे किन्तु दुर्भाग्यवश उनका वह सुख स्वप्न पूरा न हो सका।

पिता की मृत्यु के बाद इस परिवार की स्थिति बड़ी डांवाडोल हो गई। एक महीना जैसे तैसे काटा लेकिन पास का पैसा चुक जाने के बाद रोटी का प्रश्न विकराल रूप से सामने आ गया। दोनों भाइयों का स्कूल छूट गया। उस समय संजू 9वीं कक्षा में था। संजू आगे की पढ़ाई को और आगे जारी न रख सकने के कारण मां के पास खूब रोया, संजू हताश हो गया था। उसने अपने उन सम्बन्धियों को लिखा जो कि हर वर्ष खुश होकर बधाई और उपहार भेजते रहे थे। उसे पूरी आशा थी कि इन लोगों से जरूर कुछ न कुछ सहायता मिलेगी किन्तु उसके निराशा की उस समय सीमा न रही जब उसे उत्तर मिला, अब और आगे पढ़ना बेकार है, पहिले पेट के लिए कोई काम देखो। बड़ा भैया नौकरी की तलाश में निकल पड़ा और संजू आगे पढ़ने के लिए किसी सुभीते की खोज में।

संजू का जब स्कूल जाना बन्द हुआ तब से वह अपना अधिकांश समय मौहल्ले की एक लाइब्रेरी में बिताने लगा। उसने पुस्तकालय की बहुत सी कहानी किस्सों की किताबों को पढ़ डाला। एक दिन संजू के हाथ में स्वामी रामतीर्थ की जीवनी पड़ गई। संजू किताब का कीड़ा तो था ही उसने उसे भी पढ़ना प्रारंभ कर दिया। पुस्तक के दस बीस पृष्ठ ही पढ़े होंगे

कि एकदम संजू उछल पड़ा। उसके चेहरे पर एक आशा और उल्लास की लहर दौड़ गई, मानों उसे कोई अनोखी चीज मिल गई हो। ओह! स्वामी रामतीर्थ जब एक पैसे रोज की रोटी खाकर शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं⋯किताब बन्द करके बुदबुदाया। उसने पढ़ने का दृढ़ संकल्प किया और अपना निश्चय मां से कह सुनाया। मां ने गद्गद् होकर संजू को छाती से लगा लिया और बोली, "बेटा तेरे भाग्य में पढ़ना नहीं लिखा है कहीं कोई काम ढूंढ।" बड़ा भाई भी अपनी विवशता को देखकर आंसू न रोक सका।

कितने ही महीनों की दौड़ धूप के बाद संजू के बड़े भाई को एक शहर के कारखाने में अच्छी नौकरी मिल गई। मां और संजू को जब यह समाचार मिला तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। संजू ने सोचा शहर में रहकर पढ़ने लिखने के साधन और भी अधिक उपलब्ध हो सकेंगे। मां और संजू शीघ्र ही शहर पहुंच गए और संजू एक स्कूल में भर्ती हो गया।

स्कूल में शहर के लड़कों के बीच में जब संजू पहुंचा तो उसे लगा कि पढ़ने लिखने में तेज होते हुए भी वह बड़ा बुद्धू है। किताबी ज्ञान के अतिरिक्त उसकी बाहर की जानकारी बिल्कुल नहीं के बराबर थी। जब उसकी कक्षा के छोटे-छोटे बालक इधर-उधर की बातचीत करते तो संजू चुपचाप खड़ा मुंह ताकता।

संजू ने सिनेमा के पोस्टर दीवार पर चिपके तो कई बार देखे थे किन्तु उसे अभिनेताओं या निर्देशकों के नाम नहीं याद थे। वह तो कभी-कभी अपने भैया के साथ जाता था और दो घंटे सिनेमा देखकर चला जाता था। फिर उसके बाद सिनेमा सम्बन्धी चर्चा उसने न सुनी, न की, किन्तु यहां हर समय यही चर्चा। अमुक खेल में अमुक अभिनेता या अभिनेत्री ने कमाल कर दिया। संजू को बड़ा आश्चर्य होता जब यह देखता कि क्लास में पाठ याद न कर सकने वाले लड़के सिनेमा के गाने और कहानी ज्यों की त्यों महीनों बाद भी सुना देते हैं।

एक दिन क्लास में मास्टर जी की उपस्थिति में ही सिनेमा का प्रसंग चल पड़ा। शहर में किसी नई फिल्म की धूम थी। लोगों ने उस पिक्चर को चार-चार बार तक देखा था। क्लास के कुछ लड़के बहस कर रहे थे। संजू खामोश था। उसने यहां शहर में आकर अभी तक कोई फिल्म नहीं देखी थी फिर वह क्या बोलता। जो लड़के पढ़ाई के समय मास्टर जी की दृष्टि से बचने के लिए अपने को मेज की ओट में छिपाने की कोशिश करते थे, वही लड़के आज गर्दन ऊंची किये बड़े शान से मेज पर हाथ मार-मार कर अपनी बात की पुष्टि कर रहे थे। अन्त में मास्टर जी ने बच्चों को संतुष्ट करने के लिए उक्त फिल्म की सही-सही विवेचना करके समझाया। अभिनेताओं और निर्देशक की भूल और सफलता पर भी प्रकाश डाला। संजू ने विस्मय से मास्टर जी की ओर और फिर सब लड़कों की ओर देखा। उसे ऐसा लगा मानो सब लड़के उसका उपहास कर रहे हों और कह रहे हों—"ज्ञान किताब के कीड़े बनने से नहीं प्राप्त होता।" संजू ने नीची गर्दन कर ली। उसे अपनी कमी महसूस होने लगी। क्या

अपनी क्लास में वही सबसे अधिक मूर्ख है, संजू मूर्ख बने रहने को तैयार नहीं था। अतः संजू ने भी संसार का ज्ञान प्राप्त करने का निश्चय किया। उसने मन ही मन उन छोटे लड़कों को अपना गुरु बनाया जिनकी जानकारी फिल्मी जगत में क्लास के अन्दर अद्वितीय थी।

अब संजू को अपने पाठ की जगह समाचार पत्रों में फिल्मी विज्ञापन पढ़ने में आनन्द आता था। दीवार पर लगे बड़े पोस्टरों को वह ध्यान से पढ़ता और याद करने की कोशिश करता कि किस फिल्म में किस-किस ने काम किया है। अब संजू सिनेमा देखने जाता तो पहले की तरह से नहीं देखता। अब वह हर एक्टर और एक्ट्रेस की प्रत्येक बात बड़ी बारीकी से नोट करता। सीन सीनरी, गाना बजाना नाचना अभिनय सब कुछ बड़े गौर से देखता।

थोड़े ही दिनों में ही संजू का सिनेमा शौक और जानकारी बहुत बढ़ गई। अब संजू शहर में आई हुई किसी भी फिल्म को बिना देखे नहीं जाने देता बल्कि किसी-किसी फिल्म को तो कितनी ही बार देखता।

संजू ने केवल 6 महीने में ही अपने साथियों को सिनेमा सम्बन्धी जानकारी में पीछे कर दिया। अब वह ऐक्टरों के व्यक्तिगत जीवन के बारे में भी कुछ जान चुका था। क्लास में अब कभी सिनेमा सम्बन्धी बातचीत होती तो संजू बड़े गर्व के साथ लोगों को बताता कि अमुक एक्टर ने अपना पिछला बंगला छोड़ दिया है। संजू की इस अद्वितीय और अपटूडेट जानकारी के आगे लड़के ओर मास्टर की फिल्म सम्बन्धी विवाद में संजू की रूलिंग मान्य होतीं। संजू को अपनी सफलता पर बड़ी प्रसन्नता हुई किन्तु संजू के लिए यह रोज-रोज का सिनेमा देखना एक समस्या बन गई। सिनेमा देखने के लिए कायदे से पैसे प्राप्त करना असंभव था। और अभी तक जो तिकड़म से पैसे मिल जाते रहे थे उनका भी रास्ता धीरे-धीरे बन्द होता जा रहा था। उधार देने वालों ने भी पिछली रकम न मिलने के कारण आगे देने से इन्कार कर दिया था। तब···?

शहर में 'महल' फिल्म की धुन थी। क्लास के कितने ही लड़के उस फिल्म को देख आये थे। लेकिन संजू दस आने का प्रबन्ध नहीं कर सका था। वह 'महल' देखने के लिए छटपटाने लगा। अशोक कुमार और मधुबाला को देखने के लिए संजू उपाय ढूँढने लगा। भला 'महल' जैसी पिक्चर शहर में आये और उसके बिना देखे ही चली जाये। हरगिज नहीं। वह एक ऐसी तरकीब सोचने लगा जिससे यह फिल्म की दिक्कत कुछ समय के लिए दूर हो जाये और पिछले उधार का भी चुकता हो जाय।

संजू को अपनी कुचेष्टा पूरी करने के लिए अधिक दिन तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक दिन घर में आए हुए मेहमान की बढ़िया घड़ी हाथ पड़ गई। कांपते हुए हृदय से संजू ने दुस्साहस कर डाला, किन्तु अगले दिन बाजार में घड़ी बेचते हुए पकड़ा गया। इतनी बढ़िया घड़ी लड़के के पास देखकर दुकानदार को सन्देह हो गया। उसने पुलिस कान्सटेबिल को इत्तला दी और संज पकड़ा गया।

दूसरे दिन स्कूल में संजू की गिरफ्तारी की खबर बिजली की तरह फैल गई। हर लड़के के मुँह से वही चर्चा। संजू के क्लास टीचर ने यह चर्चा सुनी तो वह एकदम दंग रह गये। इतना सीधा और पढ़ने-लिखने में तेज लड़का चोरी में गिरफ्तार ? मास्टर जी ने एक लड़के से पूरा हाल पूछा, लड़के ने उत्तर दिया—

"केवल दस आने की उसे जरूरत थी 'महल' देखने के लिये।"

मास्टर जी को सारी स्थिति समझते देर न लगी। सिनेमा के शौक का यह दुष्परिणाम होगा ऐसी कदाचित् उन्हें आशा नहीं थी।

मास्टर जी क्लास से उठकर सीधे कोतवाली पहुंचे जहां संजू कल सन्धया से हवालात में वन्द था। मास्टर जी ने कोतवाल से आज्ञा लेकर हवालात के सीखचों के पास पहुंचकर धीरे से पुकारा—संजू।

संजू एक कोने में बैठा रो रहा था। उसके कानों में जव मास्टर जी का स्वर पहुंचा तो उसने लज्जा से अपनी गर्दन नीची कर ली। वह इस समय किसी को अपना मुँह दिखाना नहीं चाहता था। वह सोच रहा था कि किसी तरह धरती फट जाय और वह उसमें समा जाये।

मास्टर जी ने पुनः पुनः पुकारा संजू। संजू फूट-फूट कर रोने लगा।

अब रोने से क्या होता है संजू। जो होना था सो हो गया। तुम इधर आओ और मुझे सच्ची-सच्ची घटना वता दो मैं तुम्हें छुड़ाने की कोशिश करूंगा। मास्टर जी ने कहा।

नहीं मास्टर जी ! मैं छूटना नहीं चाहता। मैंने अपराध किया है और उसकी सजा मुझे मिलनी चाहिये, संजू ने सिसकियां भरते हुए कहा।

मास्टर जी ने दुलार भरे शब्दों में कहा—बेटा ! यह ठीक है तुमने अपराध किया है और तुम्हें उसकी सजा भी मिलनी ही चाहिए लेकिन सजा जेलखानों में नहीं होती बल्कि यदि तुम्हें अपने किये हुए कार्य पर हृदय से पश्चाताप है तो मेरी समझ से यही सच्ची सजा है।

संजू ने सारी घटना आद्योपान्त सिसकियां भरते हुए मास्टर जी को बता दी। मास्टर जी ने सुनी और अपनी गर्दन नीची कर ली। इस अपराध में केवल संजू का ही दोष नहीं। मास्टर जी को अपना दोष भी स्पष्ट महसूस होने लगा। अगर वह प्रारम्भ ही संजू के इस नये शौक को प्रोत्साहन न देते तो इस होनहार बालक की यह दुर्दशा क्यों होती। मास्टर जी की आंखें नम थी।

संजू विस्मय से मास्टर जी के चेहरे के उतार चढ़ाव को देखकर कुछ समझने की चेष्टा कर रहा था। मास्टर जी जंगले के पास से चले गये और संजू अपनी उस बन्द कोठरी के एक कोने में बैठकर अतीत के चित्र चलचित्र की भांति देखने लगा।

इस समय संजू के मन में सुरैया और देवानन्द की तस्वीर नहीं थी बल्कि इस समय माता का वात्सल्यपूर्ण आंचल को चाह थी, जिसमें वह अपने को छिपाकर समाज की निन्दा से

वच सके। संजू फूट-फूट कर रोने लगा।

मास्टर जी ने कोतवाली में अपना लिखित बयान दिया कि "संजू के पास घड़ी मेरी थी और मैंने मरम्मत कराने हेतु उसे दी थी।"

संजू छोड़ दिया गया। कितने ही दिन संजू लज्जा के मारे घर से नहीं निकला। तब एक दिन मास्टर जी ने स्वयं उसके घर जाकर उसे समझाया बुझाया और अपने साथ स्कूल ले आये।

क्लास में सन्नाटा छाया हुआ था। संजू सिर नीचा किये बैठा था। क्लास की निस्तब्धता को भंग करते हुए मास्टर जी ने ही कहा- -

भाग्य में जो लिखा है उसे तो कोई नहीं मिटा सकता है किन्तु जो व्यक्ति अपनी प्रत्येक ठोकर से कुछ न कुछ सबक लेता है वह निश्चय ही एक दिन ऊंचा उठ जाता है।

संजू ने जेब में से रूमाल निकाल कर अपनी आंख पोंछी। मास्टर जी ने आगे कहा— प्रत्येक घटना हमें सबक देने के लिये आती है। हमें बड़ी सावधानी से उसका अध्ययन करना चाहिये।

धीरे-धीरे यह घटना पुरानी होती गई और लोग भूल गये। लेकिन संजू ने अपने जीवन का रुख बदल लिया। अब वह सिनेमा की चर्चा छिड़ते ही इस पर कहता है, यह शौक बुरा तो नहीं है लेकिन इसमें बड़ी कुर्बानी की जरूरत है। जो व्यक्ति अपना समय, पैसा, स्वास्थ्य, बुद्धि और अन्त में इज्जत तक को झोंक देने की सामर्थ्य रखता हो, उसके लिये दो घण्टे रोज का मनोरंजन अच्छा है।

संजू वार्षिक परीक्षा में प्रथम आया। मास्टर जी ने उसे बधाई दी। संजू ने झुककर मास्टर जी के पैर छुए।

"अगर आपने मुझे पतन के गड्ढे से निकाला नहीं होता तो ईश्वर जाने आज मैं कहां होता।"

मास्टर जी ने संजू को उठाकर गले से लगाते हुए कहा, "ढकेला भी तो मैंने ही था।"

मास्टर जी मुस्करा रहे थे और संजू नीची गर्दन किये अपने गुरु के चरणों को निहार रहा था।

स्वप्न का सुख

मैंने स्कूली सर्टीफिकेट के अनुसार 17 वर्ष 3 महीने में इन्ट्रेंस पास कर लिया था। इस आयु में इन्ट्रेंस पास करना अगर कोई कमाल नहीं था तो शर्म की बात भी नहीं थी। लेकिन न जाने क्यों पिताजी आये दिन यही कहते अब बुढ़ापे में इन्ट्रेंस पास किया है।

एक दिन पिताजी किसी जलसे में सुन आये कि इंग्लैण्ड में कोई व्यक्ति 21 वर्ष की उमर में ही वहां का प्रधानमंत्री बन गया था। तो बस? उस दिन से वह अक्सर यही कहते कि एक वह था जो इतनी-सी उमर में इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री बन गया था और एक तुम हो जो अभी इन्ट्रेंस ही पास कर पाये हो।

लेकिन जब अगले महीने में मेरी 21वीं वर्षगांठ मनाई गई तो मैंने मां से पूछा— "क्या यह मेरी उमर सही है, मैं 21 वर्ष का हो चुका हूं?" तो मां मुस्करायी और बोली— "इतना बड़ा हो गया है लेकिन बुद्धि नहीं आई।" वो तेरी उमर स्कूल की है।

यह सुनकर मैं कुछ गम्भीर-सा हो गया, यह देख घर वाले चिन्तित होने लगे। उन्हें आशंका हुई कि कहीं यह घर से भाग न जाये। इसलिये पिताजी ने भी अपना कहना-सुनना बन्द कर दिया। बड़े भैया ने समझाया कि इस तरह चुपचाप बैठे रहने से तो अच्छा है कि तुम खाली वक्त में कुछ अखबार या अन्य विषयों की पुस्तकें पढ़ा करो। इससे तुम्हारा ज्ञान तथा पढ़ने में रुचि पैदा होगी। मुझे भैया का सुझाव पसन्द आ गया और मैं दूसरे दिन से ही नगर की एक लाइब्रेरी में जाने लगा।

अब मैं खाली समय में लाइब्रेरी चला जाता और दैनिक अखबार में खासतौर से पार्लियामेन्ट की बहस पढ़ता। उसमें मुझे बड़ी दिलचस्पी आने लगी थी।

एक दिन शायद अगस्त का महीना था और पानी बरस रहा था। पिताजी और भैया खाना खाकर दफ्तरों को रवाना हो चुके थे लेकिन मेरी हिम्मत नहीं पड़ रही थी कि ऐसी वर्षा में लाइब्रेरी जाऊं। इसलिए मैं आज का हिन्दी अखबार लेकर ऊपर कमरे में चला गया। कमरा चारों तरफ से हवादार था। अतः मैं एक चारपाई पर लेटकर समाचार-पत्र पढ़ने लगा। मेरी पहली दृष्टि प्रथम पृष्ठ पर छपी पार्लियामेन्ट की कार्यवाही पर गई। किसी सदस्य ने पं० जवाहरलाल नेहरू से पूछा था कि आप विदेशमंत्री और प्रधानमंत्री दोनों पद क्यों घेरे हुए हैं। शायद यहां योग्य व्यक्तियों की कमी है उसी समय सुनाई दिया कि 'आज 9 अगस्त' 42 की याद में शाम को एक भारी सभा होगी। मैंने सोचा क्या वहां जाना जरूरी है और पुनः अखबार पढ़ने लगा।

पानी बरसना रुक गया था लेकिन कभी-कभी हल्की-सी फुआर पड़ रही थी। मुझे

ऐसा लगने लगा कि गलियां और सड़कें अभी तक कीचड़ से भरी हुई थीं। लोग अपनी धोती को हाथ से समेटे उस कीचड़ से बचने का प्रयास करते हुए पार्क की तरफ चले जा रहे थे। सभा शुरू होने का समय तो हो चुका था लेकिन शुरू क्यों नहीं हो रही है। लोग एक-दूसरे से पूछ रहे थे। मंच पर सिवाय संयोजक महोदय के और कोई दिखाई नहीं दिया शायद किसी की प्रतीक्षा हो रही है।

दूसरे ही क्षण संयोजक महोदय मेरे सामने हाथ जोड़े कह रहे थे, मुझे आपसे एक प्रार्थना करनी है। मुझसे ? मैंने विस्मय से कहा। जी ! उन्होंने कहा और भीड़ से बाहर ले गए।

हमारा विचार आज की इस सभा का प्रधान किसी ऐसे व्यक्ति को बनाने का है जिसने 42वें आन्दोलन में सचमुच कुछ समय काम किया हो। क्योकि वीर शहीदों को श्रद्धांजलि देने वाली सभा का अध्यक्ष कोई डरपोक कायर या चापलूस बने यह शोभा नहीं देता।" वह आगे बोले कि हमने आज की सभा के लिए आपका नाम तजवीज किया है, आप इसे स्वीकार करें, बस यही प्रार्थना है।

"जिसने सन् 42 में अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिए हैं। वही आज की सभा का अध्यक्ष होने का अधिकारी है," संयोजक जी कहते जा रहे थे। 42 की बात को सुनते ही मुझे ऐसा लगा मानो पुरानी सारी घटनाएं चलचित्र की तरह मेरी आंखों के सामने नाच गयीं।

जहां पार्क में मुझे इतना विशाल जनसमूह देखकर प्रसन्नता हो रही थी वहीं मुझे मंच देखकर दुःख हुआ। मंच बड़ा ही आलीशान बनाया गया था। चारों तरफ सफेद चांदनी पर मखमली कालीन बिछे थे और कालीन पर मोटे-मोटे तकिये ढुलक रहे थे। देखने से मालूम होता था कि यह किसी नाटक मण्डली का स्टेज है, अतः मैंने संयोजक जी से कहा, "यह आपने शहीदों की हड्डियों पर महफिल सजाई है।" वह बेचारे बड़े लज्जित हुए। संयोजक ने अध्यक्ष पद के लिए मेरा नाम पेश किया और एक मोटे-से सज्जन ने जो सफेद पाजामा और ढीला कुर्ता पहने थे, ने समर्थन किया। जनता ने भी कर्तलध्वनि से प्रस्ताव का अनुमोदन किया। उसके बाद मैं अपनी शान्त और गम्भीर मुद्रा में धीरे-धीरे मंच पर माइक्रोफोन के सामने पहुंचा। वहां पर मैंने शिष्टाचार के अनुसार अध्यक्ष बनाए जाने के लिए साथियों को धन्यवाद दिया और उपस्थित जनता का आभार माना। मेरे इस कथन पर लोगों ने फिर कर्तल ध्वनि की। और मैं चुपचाप अध्यक्ष पद के आसन पर जा बैठा।

लोग मेरा गला फूल-मालाओं से भर रहे थे। अतः मैंने उनसे कहा यह सभा शहीदों को पुष्पांजलि अर्पित करने के लिए हो रही है जीवितों को नहीं। मंच पर आमंत्रित नेता और सूबे के बड़े मिनिस्टर पधार चुके थे। अतः सभा की कार्यवाही जारी हो गई थी। राष्ट्रीय गान के बाद छोटे-छोटे बच्चे अपनी रस की कविताएं मधुर स्वर में गा रहे थे और जनता तन्मय होकर उसे सुन रही थी।

विशाल जनसमह में अचानक हलचल-सी पैदा हुई। क्या है ? क्या है का शोर मचने

लगा लेकिन तुरन्त ही लोग आकाश गुंजा देने वाले नारे लगाने लगे। "सरदार पटेल की जय" सरदार पटेल भीड़ में टकराते-टकराते मंच की तरफ चले आ रहे थे। संयोजक लपककर वहां रास्ता बनाकर लेनें जा पहुंचे। सरदार पटेल के आने की कोई सूचना नहीं थी। लोग एक-दूसरे से पूछ रहे थे लेकिन जनता में अपार उत्साह और हर्ष था।

सरदार पटेल जब मंच के पास आये तो मैंने भी उनका स्वागत किया। जनता नारों से आकाश गूंजा रही थी और दर्शनों के लिये मंच की तरफ आने की कोशिश कर रही थी। लेकिन सरदार पटेल के माइक्रोफोन के सामने पहुंचते ही लोग शान्त होकर अपने स्थान पर बैठने लगे। पटेल ने अपनी भारी आवाज में कहा "भाइयो आज मैं तुम्हारे अध्यक्ष को ले जाने आया हूं। मुझे दुःख है कि मैं देर तक नहीं ठहर सकता हूं, इसलिए क्षमा मांगता हूं।" इतना कहकर सरदार पटेल मेरे पास आये और बोले—"उठो-उठो जल्दी चलो।" वह बराबर सीधे हाथ की चुटकी बजाते रहे और मुंह से 'जल्दी-जल्दी' कहते रहे।

आखिर अब क्या किया जाये? सरदार पटेल से पिण्ड छुड़ाना आसान काम नहीं था, इसलिए मजबूर होकर खड़ा हो गया। अब आगे-आगे पुलिस वाले जनता में रास्ता बनाने की कोशिश कर रहे थे और उनके पीछे मैं और पटेल साहब चल रहे थे।

जब मैं मंच से उतरने लगा था तो मैंने एक छिपी हुई दृष्टि पार्क में बैठी हुई जनता पर डाली थी। उस समय ऐसा लगा मानो नगर का प्रत्येक प्राणी मेरे इस सम्मान को अपने नगर का गौरव अनुभव कर रहा था।

पार्क के बाहर नई चमचमाती कार खड़ी थी। हम लोग जाकर उसमें बैठ गए और वह रेंगने लगी। पुलिस अधिकारियों ने कार को सेल्यूट किया। भीड़ से बाहर होते ही हमारी कार हवा से बातें करने लगी। मैंने सरदार पटेल की ओर मुँह करके कहा, "आप भी बड़े विचित्र हैं।" सरदार पटेल खिलखिलाकर हंस पड़े। मैंने देखा कि उनकी हंसी में भी अजीब दृढ़ता और एक अजीब जादू है। आज मैं अनुभव कर रहा था कि सरदार पटेल ने देश के कैसे इन शक्तिशाली राजे, महाराजे और नबाबों को चुटकी बजाकर सिंह से बकरी बना दिया था। बस अपनी बात कही और अड़ गये। बेचारे दूसरे को न सोचने का मौका न बात करने की गुंजाइश। चुटकी बजाई और हंस दिए। मैंने मन-ही-मन कहा, "वाह रे भारत के लौह पुरुष।"

ठीक सत्तावन मिनट में हमारी कार पं० जवाहरलाल जी की कोठी में दाखिल हुई। इस समय पूरा मंत्रिमण्डल हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। कार के रुकते ही अपनी टोपी सम्भालते हुए नेहरू जी बरामदे में आ पहुंचे। कार से पहले पटेल साहब उतरे मैंने हाथ जोड़-कर नमस्ते करी और इसके बाद हमें अन्दर बड़े कमरे में ले आया गया।

पंडित जी ने मुझसे वह सब बातें कहीं जिसके लिए मुझे बुलाया गया था। लेकिन मैंने कहा मेरी आत्मा नकेल डाले ऊंट की तरह रहने को तैयार नहीं। मेरे इस उत्तर से कमरे

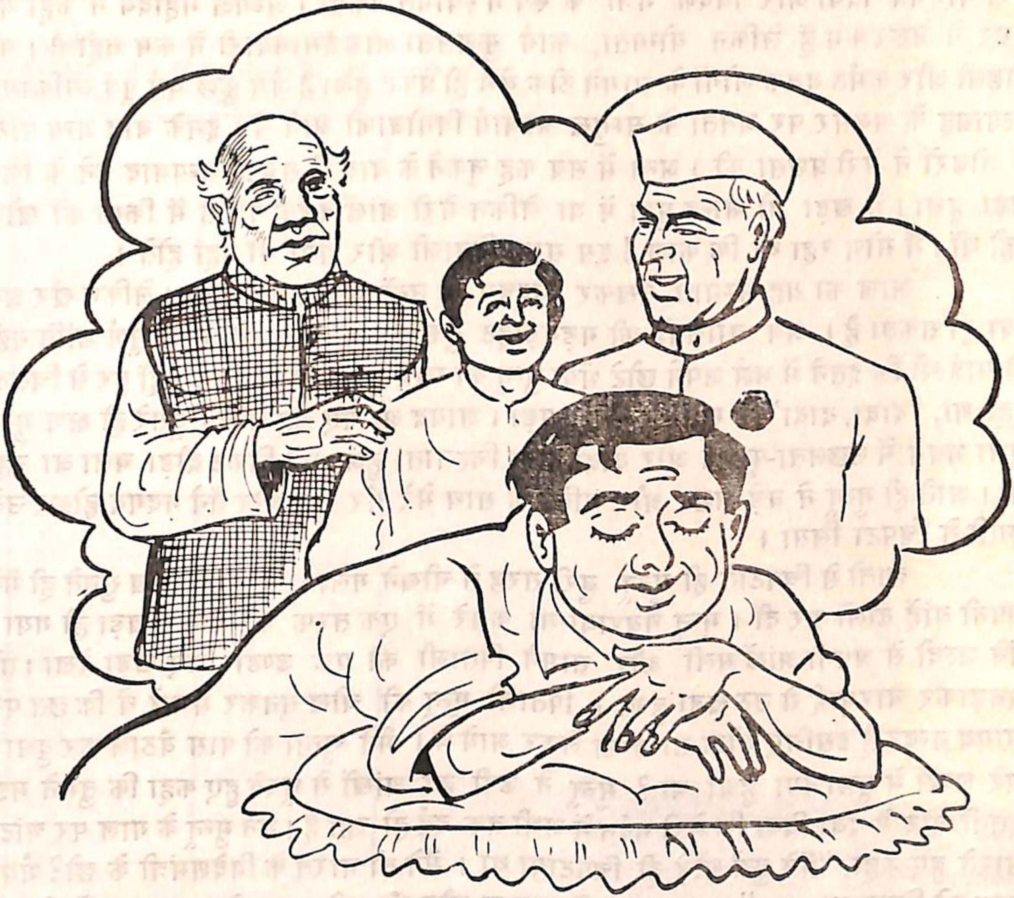

में सन्नाटा छा गया। कितनी ही देर तक निस्तब्धता रही किन्तु अन्त में लौह पुरुष का मुँह खुला। सरदार पटेल बोले, डेमोक्रेसी में नकेल किसी व्यक्ति विशेष की नहीं जनता की ही होती है। हम लोग तो जनतंत्रीय प्रणाली के समर्थक और पोषक हैं।

मैंने पंडितजी की बात सिद्धान्ततः स्वीकार की हो यह बात नहीं थी, बल्कि मित्रों का आग्रह, जनता की इच्छा को देखकर मैं खामोश हो गया था।

इस चर्चा के बाद मैं पं० नेहरू के साथ संसद भवन में पहुंचा। आज संसद भवन की दर्शक गेलरी खचाखच भरी हुई थी। संसद भवन में पहुंचते ही लोगों ने कर्तल ध्वनि से स्वागत किया।

सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम अध्यक्ष महोदय ने सदस्यों के सम्मुख

मेरा परिचय दिया और विदेश मंत्री के रूप में स्वागत किया। अध्यक्ष महोदय ने कहा यह उमर में जरूर कम हैं लेकिन योग्यता, कार्य कुशलता और ईमानदारी में कम नहीं है। यह साहसी और कर्मठ युवक लोगों के सामने ठीक वैसे ही प्रकट हुआ है जैसे कुछ वर्ष पूर्व व्यक्तिगत सत्याग्रह के अवसर पर जनता के सम्मुख आचार्य विनोबाजी आये थे। इनके बाद अन्य पार्टी के लीडरों ने मेरी प्रशंसा की। अन्त में सब कह चुकने के बाद मैं सबको धन्यवाद देने के लिए खड़ा हुआ। मैं खड़ा तो शान्त मुद्रा में था लेकिन मेरी आंखें दर्शक गैलरी में किसी को खोज रही थीं। मैं सोच रहा था कि काश ! इस समय पिताजी और भैया भी यहां होते।

आज का यह सम्मान देखकर निश्चय ही उन्हें अपार हर्ष होता। लेकिन खैर अब क्या हो सकता है। अब तालियों की गड़गड़ाहट कुछ कम हो चली थी लेकिन पूर्ण शांति नहीं हो पाई थी कि इतने में मुझे अपने छोटे भैया मुन्नू का स्वर सुनाई दिया। वह कहीं दूर से चिल्ला रहा था, "दादा, दादा" मैं खुशी से उछल पड़ा। शायद आ गए यह लोग। दूसरे ही क्षण मुन्नू सभा भवन में उछलता-कूदता और दादा-दादा चिल्लाता हुआ मेरे निकट दौड़ा चला आ रहा था। आते ही मुन्नू ने बड़े श्रद्धा और भक्ति के साथ मेरे पैर छुए और मैंने गदगद होकर उसे छाती से चिपटा लिया।

छाती से चिपटाते ही मुन्नू बुरी तरह से चीखने गला। मुन्नू की चीख सुनते ही मैंने अपनी बांहें ढीली कर दीं। मुन्नू घबराया-सा कमरे में एक तरफ को जाकर खड़ा हो गया। मैंने जल्दी से अपनी आंखें मलीं और सामने पिताजी को एक डण्डा लिए खड़ा देखा। तो घबड़ाकर चारपाई से उठ खड़ा हुआ। पिताजी मुन्नू की चीख सुनकर समझे थे कि छत पर शायद बन्दर है इसलिए मोटा-सा डण्डा लेकर आये थे। मैंने मुन्ना को पास बैठाल कर दुलार भरे शब्दों में पूछा क्या हुआ था ? मुन्नू ने डरी हुई आंखों से घूरते हुए कहा कि तुमने मझे इतनी जोर से दवा दिया कि मेरी गर्दन में अभी तक दर्द हो रहा है। मैंने मुन्नू के गाल पर चांटा मारते हुए कहा, "मैंने तुझे थोड़े ही चिपटाया था। मैंने तो भारत के विदेशमंत्री के छोटे भैया मुन्नू को चिपटाया था।" मुन्नू वह नहीं समझा और मुँह की तरफ देखता रहा। मैं सोच में पड़ गया कि यह तालियों की गड़गड़ाहट तोपों का गर्जन और कदम मिलाते घोड़ों की टापें जैसी आवाजें यह सब क्या था ··? इतने में बादलों ने गरजना शुरू कर दिया जिससे सब स्पष्ट हो गया। यह मेरा स्वप्न था। लेकिन मुझे स्वप्न का सुख प्राप्त न हो सका।

मैं सोच रहा था कि काश ऐसा स्वप्न मुझे ब्रिटिश सरकार के जमाने में दीखा होता तो निश्चय ही मैं अंग्रेज जज के निर्णय के अनुसार विदेशमन्त्री पद पाने का कानूनी अधिकारी हो जाता। क्योंकि उनकी यह मान्य नजीर थी कि गर्म देश के स्वप्न, स्वप्न नहीं सत्य होते हैं। इस ही आधार पर सन् 1775 में एक गवाह को स्वप्न में देखी गई बात के चश्मदीद गवाह मानकर महाराज नन्द कुमार को फांसी दे दी गई थी। लेकिन अब क्या हो सकता है। □□

I. I. A. S. LIBRARY

. No.

: book was issued from the library on the date
stamped. It is due back within one month of its
: of issue, if not recalled earlier.

SHIMLA

Library IIAS, Shimla
H 028.5 M 426 R
00110671

✆ 242 9079
कवि सभा दिल्ली
30/106, गली नं०-7, विश्वास नगर
शाहदरा, दिल्ली-110 032